नियमसार गाथा ८५।

मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८५।।

जो जीव त्याग अनाचरण आचार में स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८५॥

टीका:—**यहाँ (इस गाथा में) निश्चयचरणात्मक...** निश्चय चरण आचार। स्वरूप-आत्मस्वरूप में आचरण करना। निजानन्द भगवान आत्मा में आचरण करने का नाम आचार है। आहाहा! वह निश्चय चरणस्वरूप, उसका नाम निश्चयचारित्रस्वरूप। वह **परमोपेक्षासंयम...** राग की अपेक्षा छोड़कर व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की भी अपेक्षा छोड़कर... सूक्ष्म बात है, भाई! **परमोपेक्षासंयम...** जिसे कोई राग की अपेक्षा नहीं। चिदानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु के अवलम्बन में स्थिरता करता है, स्थिर करता है, उसका नाम परमोपेक्षासंयम कहा जाता है। उसके **धारण करनेवाले...** ऐसे परमोपेक्षासंयम को **धारण करनेवाले को निश्चयप्रतिक्रमण का स्वरूप होता है...** उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है। सच्चा प्रतिक्रमण कहो, सच्ची सामायिक अन्तर वीतरागदशा कहो, सच्ची अन्दर वीतराग की स्तुति कहो, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की स्तुति-अन्दर एकाग्रता। शुद्धस्वरूप में एकाग्रता का आचरण, उसे यहाँ आचार कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। उसका **स्वरूप होता है - ऐसा कहा है।** अब विशेष (कहते हैं)।

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को... अर्थात्? जिसे भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की जिसे अपेक्षा और आश्रय है, उसे रागादि दया, दान का व्यवहाररत्नत्रय का राग, उसकी भी जिसे उपेक्षा है। जिसे स्वभाव की अपेक्षा है, उसे विभाव की उपेक्षा है। ऐसी

बातें हैं। इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। इसका नाम सच्चा संयम और सच्चा आचार कहा जाता है। यह आचार! आहाहा!

नियम से... निश्चय से **परमोपेक्षासंयम...** जिसे कोई विकल्प की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र को पढ़ने की ओर के झुकाव का राग, उसकी भी जिसे उपेक्षा है, क्योंकि वे तीनों बन्धन का कारण है। आहाहा! समझ में आया? प्रतिक्रमण है न? परमार्थप्रतिक्रमण अर्थात् दोषों से विमुख होना। ऐसा न कहकर, यहाँ निर्मलानन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा में रमणता करना, वह ही पर से उपेक्षा है। आहाहा!

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध चिदानन्द प्रभु, अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, उसकी रमणता के अतिरिक्त-उसकी आराधना के अतिरिक्त, उसकी लीनता के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** आहाहा! भगवन्त! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। लोगों ने व्यवहार के प्रेम में फँसकर अनादि काल से चैतन्य आनन्द शक्ति है, उसे गँवायी है। आहाहा! यह सच्चिदानन्द प्रभु; सत् अर्थात् शाश्वत्; चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु की अपेक्षा रखकर पर की अपेक्षा छोड़ी है, क्योंकि इस आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग है, वह अनाचार है। कठिन बात है, भाई! है?

शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध ज्ञायकभाव ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर भगवान पूर्ण ध्रुव, ज्ञान और आनन्द और शान्ति की पूर्णता से भरपूर प्रभु भगवान की आराधना, उसकी सन्मुखता के अतिरिक्त जितनी परसन्मुखता है, वह सब अनाचार है। आचार और अनाचार की यह व्याख्या है। लोग तो बाहर के क्रियाकाण्ड कुछ करे, वह सदाचार है-ऐसा लोग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु!

तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! भगवत्स्वरूप अन्दर, परमेश्वरस्वरूप आत्मा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का समूह वह प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसे पामर राग की दशा है, वह पामर दशा है। देहादि की बात

क्या करना ? वे तो जड़, मिट्टी, धूल हैं। यह मिट्टी है, वह तो आत्मा में है नहीं, आत्मा की है ही नहीं। वाणी और शरीर और मन, ये तीनों जड़ हैं, उनमें, आत्मा नहीं है, वे आत्मा में नहीं हैं, उनकी तो भिन्नता है, परन्तु अन्दर में उत्पन्न हुआ व्यवहाररत्नत्रय का राग.. आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या करे ? एकान्त लगे, ऐसा लगता है। एकान्त है, ऐसा लोगों को लगता है। कहते हैं बेचारे। क्या करे ? है, एकान्त ही है; सम्यक् एकान्त ही यह है। सम्यक् एकान्त। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ, उस ओर की सन्मुखता और एकाग्रता, वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

निश्चय से, नियम से अर्थात् निश्चय से **परमोपेक्षासंयमवाले को...** परम उपेक्षा। जिसे राग की-व्यवहार की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा तो है ही नहीं। बाह्यनिमित्त। अन्दर का निमित्त जो व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा परमसंयमी को **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, वह भी दुःख है। यह जँचे कैसे ? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प है, वह राग है। वह राग है, सो दुःख है। भगवान आत्मा तो अनाकुल आनन्दस्वरूप है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा... परम आनन्द और परम ज्ञान और परम शान्ति / वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान, पूर्ण से भरपूर ऐसे **शुद्ध आत्मा की आराधना...** उस शुद्ध आत्मा की सेवना। शुद्ध आत्मा की सन्मुखता करके सेवना, सन्मुखता करके एकाग्रता, इसके **अतिरिक्त सब अनाचार है;...** है ? आहाहा! मार्ग प्रभु! ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को ऐसा लगता है। सोनगढ़वाले निश्चय एकान्त करते हैं, एकान्त करते हैं, ऐसा बेचारे कहते हैं। व्यवहार की बात तो उड़ा देते हैं। व्यवहार से कुछ लाभ होता है, यह बात करते ही नहीं। बात तो सत्य है न, प्रभु! तेरी बात सत्य है। मार्ग यह है, बापू! अरे रे! चौरासी के अवतार में अनन्त काल से भटकते हुए इसे पर की उपेक्षा आयी ही नहीं और स्व की अपेक्षा हुई ही नहीं। पर की अपेक्षा रखी है और स्व की उपेक्षा की है। भाषा सादी है, भगवान! आहाहा!

भगवन्त! तू परमात्मस्वरूप अन्दर है, प्रभु! परन्तु कैसे जँचे ? आहाहा! परमानन्द का नाथ, कहते हैं कि उसकी सेवा के अतिरिक्त, उसकी सन्मुखता आराधना के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि हे नाथ! आत्मा! तेरा शुद्धस्वरूप अन्दर है, उसकी सेवा के अतिरिक्त हमारी ओर का तेरा लक्ष्य जाए, वह भी

राग और अनाचार है। आहाहा! यह वीतरागी सन्तों की वाणी! आहाहा! एक लाईन में कितना भरा है! आहाहा! भाई! यह तो मोक्षमार्ग की बात है बापू! मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव होता है। रागभाव, वह तो दुःखरूप भाव होता है। मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव, आनन्दमय होता है, अनाकुल भाव होता है, शान्तभाव होता है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा की आराधना... आहाहा! एक ही शब्द में तो गजब किया है! पूर्ण सच्चिदानन्द आत्मा ध्रुव नित्यानन्द, अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु अन्दर है। भगवान! तू भगवान है। उसकी आराधना के अतिरिक्त, उसकी सन्मुखता के अतिरिक्त, जितनी परसन्मुखता होती है, वह सब अनाचार है। है इसमें? आहाहा! ऐसा है, भगवन!

यह दूसरी दो पुस्तकें आयी हैं वे किसी की हैं, हों! उस विद्यासागर ने बनायी है न? रयणसार में वह व्यवहार छापा है न? उसने पुस्तक दी है, वह भेजी है। हुकमीचन्दजी को। आहाहा! क्या हो? प्रभु! अध्यात्म का एकान्त का स्वरूप इन्दौर में से निषेध करके डाला है, ऐसा समाचार-पत्र में आया है। निषेध कर डाला। इन्दौर में... अध्यात्म का एकान्त है। अरे! प्रभु! सुन न, भाई! भगवान! बापू! तेरे सन्मुख की बातें हैं, वे तुझे सुहाती नहीं और परसन्मुख की बातें जो विराधना और राग और दुःख है, वह तुझे रुचता है, प्रभु! वह तेरी प्रभुता को लांछन है, नाथ! आहाहा! बात यह है, प्रभु! आहाहा!

सब प्रभु हैं और सब प्रभु होओ। आहाहा! यह भूल निकालकर प्रभु होओ। प्रभु है, वैसा हो। सब जीव भगवन्त हैं। आहाहा! शुद्धस्वरूप से विराजमान अनाकुल आनन्द का रसकन्द ध्रुव है, ऐसी तेरी पर्याय में तुझे अनाकुल आनन्द की दशा होओ, सब आत्माएँ ऐसी होओ। आहाहा! धर्मी को तो यह भावना होती है न!

यह यहाँ कहते हैं, **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** हिन्दी में भी जरा समझ लेना। शुद्ध आत्मा की सेवा बिना, ऐसा। इसीलिए भाषा गुजराती भी सादी है। **आराधना के अतिरिक्त सब...** सब। गजब किया है न? आहाहा! नग्न मुनि! नागा बादशाह से आघा!! जिन्हें समाज की कुछ पड़ी नहीं है कि समाज संगठित रहेगी या नहीं? यह बात बाहर प्रसिद्ध करने से भाग पड़ जाएँगे या नहीं? आहाहा! प्रभु! तू इस मार्ग में है और यह मार्ग यह है।

शुद्धस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द, जिसमें दया, दान के विकल्प की गन्ध नहीं। दया, दान भी हिंसा है। पर की दया का भाव, वह हिंसा है, राग है। आहाहा! भगवान परमात्मा है, उनकी भक्ति का भाव भी राग है और हिंसा है। वह अनाचार है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! है या नहीं इसमें? आहाहा! प्रभु! तू तेरे पक्ष में चढ़। इस राग के पक्ष से हट जा, नाथ! आहाहा! इस विकल्प का जो राग उठता है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंच महाव्रत या शास्त्र पढ़ना, वह सब राग है। भगवन्त! उस राग के पक्ष से हट जा, वह राग तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त सब अनाचार है;... आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। भगवान की भक्ति करते हैं, भगवान का स्मरण करते हैं.. णमो अरिहंताणं... अरिहंताणं... यह तो कहते हैं कि यह स्मरण कर तो वह राग है, विकार है और दुःख है। परद्रव्य की ओर का लक्ष्य करके जो भाव होता है, वह राग है। आहाहा! कठिन लगता है। सोनगढ़ के नाम से एकान्त है, (ऐसा कहते हैं) आज आया है, भाई! करुणादीप (जैन समाचार-पत्र) में (कि) इन्दौर में से अध्यात्म के एकान्त का खण्डन किया—दूर कर दिया है, ऐसा आया है। इन्दौर में से सोनगढ़ का। नाम सोनगढ़ का नहीं दिया, अध्यात्म का एकान्त है, उसे इन्दौर में से दूर कर दिया। आहाहा! प्रभु! प्रभु! क्या किया? प्रभु तूने।

यहाँ कहते हैं, यह पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है। मुनिराज है न? पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त, मुनि, भावलिंगी सन्त पंच परमेष्ठी में हैं। जिन्हें पंच परमेष्ठी में गणधर नमस्कार करते हैं, उनकी यह वाणी है। यह वाणी है कुन्दकुन्दाचार्यदेव का श्लोक, परन्तु इसकी उन्होंने टीका की है, स्पष्टीकरण किया है। थोड़ा कहा परन्तु बहुत करके जानना, प्रभु! भाई! आहाहा! सब बड़ी-बड़ी बातें तो बहुत आयेंगी और उसमें तू तेरे राग में रंजित हो जाएगा। राग में रंग जाएगा। प्रभु! तेरा स्वभाव तो वीतराग है न? आहाहा! वह राग में रंगा हुआ... आहाहा!

रंग का दृष्टान्त दिया है न? (प्रवचनसार ४७ नय में) रंगरेज का दृष्टान्त दिया है। जैसे रंगरेज रंग करता है, उसमें आत्मा भी राग को करता है। वह भी एक उसमें नय है। ४७ नय आते हैं न? भाई! ४७ नय। उसमें वह कर्तानय है न? उसमें उस रंगरेज का दृष्टान्त दिया है कि जैसे रंगरेज रंग को करता है? वस्त्र डुबोता है। हमने तो देखा था। हमारे भाई

का लड़का है न वहाँ? मुम्बई, 'भूपेन्द्र डाईंग वर्क्स' वहाँ उसे बड़ा खाता, अब तीनों अलग हो गये। इकट्ठे थे तब बड़ा चलता था। वहाँ एक बार दुकान पर चरण करने ले गये थे। वहाँ उसके नौकर रंगते थे। बहुत नौकर। तीनों इकट्ठे थे, तब एक दिन की पाँच हजार की आमदनी थी। अभी तो क्या? धर्म-बर्म की कुछ नहीं। मुम्बई जावें तो सुनने आवे नहीं।

मुमुक्षु : पैसा बहुत है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा धूल है। आहाहा!

मुझे तो दूसरा कहना था। मैं वहाँ गया तब उसके नौकर रंगते थे। हाथ में तो कपड़ा लिया जाए नहीं। गर्म होवे न, इसलिए लकड़ी में डालकर वस्त्र को रंग में डुबोते थे। ऐसे ऊँचा-नीचा करते थे। रंगरेज रंग लगाते थे। इसी प्रकार प्रभु! तुझे पुण्य और पाप का रंग अनादि से लग गया है। रंग गया है। उस रंग को अब छोड़। आहाहा! यह प्रतिक्रमण है न? आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! महँगी पड़े, ऐसी है परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! अनन्त निगोद और नरक के भव किये, वह भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था—ऐसा कैसे (कहा जाए)? भाई! आहाहा! आत्मा अनादि का है। अनादि का रहा कहाँ? नरक, निगोद लट, चींटी, कौआ, और कुत्ते के भव करके रहा। आहाहा! और जहाँ मनुष्य हुआ, वहाँ भूल गया। हो गया। मानो हम मनुष्य हैं। हम यह सब हैं। हम ऐसे हैं।

मुमुक्षु : इसका नाम पर्यायदृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायदृष्टि, बाहर दृष्टि, यह सब चमक। आहाहा! लड़का और लड़के के लड़के और उसके लड़के के लड़के की बहुएँ, वे सब वस्त्र पहनकर निकले तो अपनी आँख स्थिर हो.. कि आहाहा! पाँच-पाँच हजार की साड़ी हो और पहनकर निकले तो दूसरे नजर करें। तो कहे, अपनी साड़ी दिखती है। इसमें अपनी शोभा दिखती है। अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? तू कहाँ जाता है? आहाहा! यहाँ तो प्रभु वहाँ तक कहते हैं कि एक आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान की अन्दर में सेवा के अतिरिक्त सब अनाचार है। भाई! तुझे क्या कहना है?

मुमुक्षु : तुझमें से निकल जाए तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझमें निकल जाए, तुझमें वह है ही नहीं। तू वह आत्मा ही नहीं—रागादि तो अनात्मा, विकार है। आहाहा!

वह **सब अनाचार है; इसीलिए...** अब कहते हैं कि क्या कारण? कि वह **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** सिवाय कहते हैं न? हिन्दी में क्या कहते हैं? अलावा? उसके अलावा। **सब अनाचार है;...** पंच महाव्रतधारी सन्त मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव की (गाथा की) टीका करते हैं। ऐसे मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं। तुमको जँचे, न जँचे, बापू! आप स्वतन्त्र हैं परन्तु भाई! **इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर...** आहाहा! है? **सर्व अनाचार छोड़कर...** प्रभु! आहाहा!

ज्ञानाचार और दर्शनाचार जो व्यवहार है, व्यवहार। वह सब भी अनाचार है, कहते हैं। आहाहा! व्यवहार। निश्चय ज्ञानाचार तो आत्मा ज्ञान में रमे, वह ज्ञानाचार है और शास्त्र का पढ़ना और उसका ध्यान रखना, वह व्यवहार ज्ञानाचार है, वह राग है। राग है, वह सब अनाचार है और अनाचार है, **इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर...** आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि अमुक जाति का राग रख और अमुक जाति का राग छोड़। आहाहा! **सर्व अनाचार छोड़कर...** आहाहा! परन्तु प्रभु! हमें गृहस्थाश्रम में रहना है, अब आप कहो कि यह कुछ नहीं करना। लाभ हो (नहीं)... तो अब हमें करना क्या? परन्तु गृहस्थाश्रम में है ही कहाँ? तू तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। आहाहा! गृहस्थाश्रम की पर्याय तो तेरी नहीं परन्तु मुनि की पर्याय जितना भी तू नहीं है। आहाहा!

भगवन्त! तेरा आचार जो आराधना, उसके अतिरिक्त सब अनाचार छोड़कर... **सर्व अनाचार छोड़कर...** आहाहा! लोग दया, दान, व्रत, तप को सदाचार कहते हैं, वह सदाचार नहीं है; वह असदाचार है। वह राग है, विकल्प है, प्रभु! मार्ग सूक्ष्म है, प्रभु! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा! उसे श्रद्धा करने में अभी दिक्कत आती है। आचरण करना, वह तो फिर एक ओर रहा। मार्ग यह है।

शुद्धचैतन्य स्वभाव की रमणता के अतिरिक्त **सब अनाचार है... इसलिए सर्व अनाचार छोड़कर सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज...** आहाहा! अब आचार की व्याख्या करते हैं। **सर्व अनाचार छोड़कर...** अब आचार अर्थात् क्या? स्वाभाविक चिद्ज्ञान विलास लक्षण। स्वाभाविक भगवान, ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान लक्षण से लक्ष्य हो, ऐसा जो **सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** निरंजन... आहाहा! निरंजन - जिसमें अंजन / मैल, राग नहीं, पुण्य नहीं, संसार नहीं। जिसमें उदयभाव संसार नहीं।

आहाहा! वह तो मुक्तस्वरूप प्रभु अन्दर है। अरेरे! द्रव्यस्वरूप जो वस्तु है, वह तो मुक्तस्वरूप है। उस मुक्तस्वरूप को। **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** भाषा तो देखो! पर भगवान, ऐसा नहीं। अरिहन्त और सिद्ध, वह नहीं। **निरंजन निज परमात्मतत्त्व की भावना...** आहाहा! कैसे जँचे? आहाहा!

माप निकालना आता नहीं न? माप निकालने का मापक ही अलग है। आहाहा! जिसका स्वभाव उससे माप क्या? हद क्या? जिसका स्वरूप शुद्ध सहज है, उसकी हद और परिमितता-मर्यादा क्या? आहाहा! भले क्षेत्र शरीर प्रमाण हो, परन्तु सहज चिद्विलास, वह तो अपार स्वभाव जिसका है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा सहज चिद्विलास। चिद् अर्थात् ज्ञान। ज्ञान का विलास लक्षण। वह तो उस ज्ञान का विलास लक्षण है, दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प, वह कोई आत्मा का लक्षण नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन... जिसे अंजन नहीं, मैल नहीं। निरंजन निराकार परमात्मा अन्दर है। ऐसा जो द्रव्यस्वभाव भगवान परमात्मा **निज परमात्मतत्त्व...** अपना परमात्मा। पर परमात्मा, वह तो व्यवहार हो गया। पंच परमेष्ठी को मानना और पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाना, होता है, आता है परन्तु है राग। आहाहा! स्वद्रव्य के सन्मुख जाना। निज परमात्मतत्त्व-ऐसा लिया है न? **निज परमात्मतत्त्व...** परपरमात्मतत्त्व नहीं। आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप...** अब देखो! यहाँ कितने ही ऐसा कहते हैं न कि भावना, वह तो कल्पना है। वह आता है न? भाई! श्रावक का। उस दिन उन्होंने कहा था न? दयाचन्दजी। श्रावक को सामायिक में शुद्ध उपयोग की भावना होती है। तब वह कहे, भावना अर्थात् भावे। परन्तु यहाँ तो शुद्ध उपयोग की भावना, वह तो शुद्धोपयोग है। यह देखो! क्या कहते हैं?

निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप आचार... भावनास्वरूप आचार। आहाहा! गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है। आहाहा! निज परमात्मा। निज अर्थात् अपना परमस्वरूप भगवान, नित्यानन्दनाथ की **भावनास्वरूप...** उसकी भावनास्वरूप अर्थात् अन्तर एकाग्रता स्वरूप। **आचार...** उसका नाम आचार है। बाकी तो अथाणा को आचार कहते हैं न? क्या कहलाता है? अथाणा क्या कहलाता है। वह आम का... उसे अचार कहते हैं या नहीं? आम, गुँदा को अचार कहते हैं। इस आचार के अतिरिक्त वे सब (अचार) अथाणा है।

आहाहा! अरे! निवृत्ति कहाँ? प्रभु! समय चला जा रहा है। देह के गिरने की सन्मुखता तो होती है। जो अवधि है, उस अवधि प्रमाण यहाँ रहेगा, उसमें तो अवधि निश्चित हो गयी है। आहाहा!

यह **निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप...** ऐसा लिया है न? अकेली भावना.. भावना.. कल्पना ऐसा नहीं। **परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप आचार...** इसका अर्थात् आचार है, नीचे अर्थ है। **सहजचैतन्यविलासात्मक...** आत्मक अर्थात् स्वरूप। **निर्मल निज परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना...** अन्तर अनुभव करना। अतीन्द्रिय आनन्द -स्वभाव भगवान को अनुभव करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को अनुभव करने का नाम आचार है। आहाहा! है या नहीं? छोटाभाई! अन्दर है न? आहाहा!

निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप... भावना अर्थात् विकल्प नहीं। एकाग्रता स्वरूप, शुद्ध चैतन्यमूर्ति वीतरागमूर्ति प्रभु में एकाग्रतास्वरूप आचार। कि जो आचार **परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना, वही आचार का स्वरूप है;...** यह आचार का स्वरूप है। यह आचार करते हैं या नहीं? कौन सा आचार? कि यह (आचार) आहाहा! समझ में आया? ऐसी कठिन बातें। निवृत्ति नहीं मिलती। सूक्ष्म पड़े, कठिन पड़े, ऐसा लगता है और यह सब करते हैं, वह इसे सरल पड़ता है। अनादि का राग और द्वेष और विकल्प। राग-द्वेष और विकल्प करता है, हों! दूसरा कुछ करता नहीं। पर का कुछ वस्त्र बदल सके या किसी को कोई चीज़ दे सके-ले सके, वह तो तीन काल में कर नहीं सकता। कर सकता है वह पुण्य और पाप, राग और द्वेष तथा मिथ्यात्वभाव। आहाहा! समझ में आया?

यह ऐसा आचार। भाषा तो देखो! टीका, ओहोहो! भरतक्षेत्र में ऐसी टीका अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर सन्तों ने तो परमात्मा को नीचे उतारा है। प्रभु! यहाँ आओ, मुझे वहाँ आना है। आहाहा! सिद्ध के साथ बातें की हैं। सिद्ध यह आत्मा, हों! आहाहा! 'सिद्धसमान सदा पद मेरौ' आता है न?

'चेतनरूप अनूप अमूरत; सिद्ध समान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ।
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगम केरौ।'

आहाहा! 'घट वास बसै... मिटे..' (वेगि मिटै भववास बसेरौ)। आहाहा!

ऐसे आचार में जो परम तपोधन... ऐसेआचार में जो परम तपोधन मुनि। आहाहा! परम तपरूपी जिनका धन है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है, अतीन्द्रिय आनन्द, वह उनका धन है। अतीन्द्रिय आनन्द का जो अनुभव है, वह उनका धन है। वह तपरूपी धन है। इस लोक को धूलरूपी धन है। आहाहा! पूर्व-पश्चिम का बड़ा अन्तर लगे। बात तो सत्य है, भाई!

ऐसे **सहजवैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ...** ऐसी भावना के स्वरूप में आचार में रहा और सहजवैराग्य-पर से **वैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ...** ऐसा। अस्तिरूप से स्वरूप में आचार में रहा हुआ, नास्तिरूप से सहजवैराग्यभावनारूप से रहा हुआ। आहाहा! पुण्य-पाप के अधिकार में कहा है न? भाई! शुभ और अशुभभाव से विरक्त, वह वैराग्य है। श्लोक है न? समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में। वैराग्य किसे कहते हैं? यह स्त्री, पुत्र छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठे, वह वैराग्य? वह वैराग्य नहीं है। समयसार में अधिकार है। शुभ और अशुभभाव, राग से विरक्त होने का नाम वैराग्य है। आत्मा में रक्त होना और विकार से विरक्त होना.. आहाहा! वैराग्य की व्याख्या अलग। आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप भगवान में अन्दर प्रेम-रति-लीनता और पुण्य-पाप के भाव से विरक्तता को वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! शब्द-शब्द में अन्तर है। दुनिया से दूसरा प्रकार लगे, भाई! पूरे दिन यह सुना हो कि यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो... यह करो.. सवेरे उठकर भगवान की भक्ति करो, पूजा करो, स्तुति करो, यह करो। थोड़ा पाँच-दस मिनिट पढ़ो। छह आवश्यक है न? भाई! यह तो सब विकल्प की-राग की बातें हैं। होता है, पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा राग होता है परन्तु वह राग है, वह अनाचार है। आहाहा! इसमें है या नहीं?

वह **सहजवैराग्यभावनारूप से...** सहज क्यों कहा? वहाँ हठ नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का दल भगवान जहाँ अनुभव में आया, वहाँ सहजरूप से राग से वैराग्य हो गया, विरक्त हो गया। **सहजवैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ...** राग के अभाव-स्वभावरूप परिणमित होता हुआ। आहाहा! गाथा के एक-एक शब्द में इतना भरा है, लो!

स्थिर भाव करता है,... आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम। स्वयं ज्योति सुखधाम, उसमें जो अन्दर स्थिरता करता है। स्थिर... स्थिर। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन हो जाता है। आहाहा! **वह परम तपोधन ही...** वह परम तपोधन। जिसे वह तपरूपी धन है। वह तप, यह अपवास करो, यह व्रत नहीं। यह तो सब लंघन है। अमृत के सागर को उछालना, सोने को जैसे गेरु लगाने से ओपता-शोभता है। गेरु, गेरु। इसी प्रकार भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित इच्छा का निरोध करके अन्दर अमृतसागर में डूबे, उसका नाम तप कहने में आता है। आहाहा! व्याख्या एक-एक अलग है 'विजयन्ति इति तपः' जिसमें आत्मा की विजय हो। शुद्धता की, वीतरागता की वृद्धि हो। वह विजय होती है, उसका नाम तप कहने में आता है। भाषा तो सादी है, परन्तु प्रभु! भाव तो है, वह है। क्या हो? इसमें कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है और समाज का बड़ा भाग, बेचारा कुछ विचार में भी नहीं पड़ा है। धन्धे-पानी में पड़ा हो, कहीं सुनने जाए (तो) ऊपर - पाट पर बैठा हो, वह जो कहे, उसे जय नारायण। आहाहा! जय, जय! हो गया। बेचारे की तुलना करके सत्य और असत्य क्या है? उसकी तुलना करने का भी अवसर और निवृत्ति नहीं है। आहाहा! यहाँ तो पुण्य और पाप के भाव से भी निवृत्त होकर फुरसत निकालना है, ऐसा कहते हैं। वह वैराग्य परायण है। आहाहा!

सहजवैराग्यभावनारूप से... देखो! वहाँ भी भावना आयी। उसमें भी भावना आयी थी। परमात्मतत्त्व की भावना अस्तिरूप से थी। यह सहज वैराग्यभावना पर से नास्तिरूप है। **परिणमित हुआ स्थिर भाव करता है,...** अन्तर आनन्द में जो स्थिर होता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु! प्रभु आत्मा आनन्द का दल है, उसमें जो स्थिर होता है... आहाहा! **वह परम तपोधन ही...** देखा? **वह परम तपोधन ही...** दूसरे नहीं। ऐसे जो परम तपोधन हैं, (वे) ही **प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** उन्हें प्रतिक्रमण कहा जाता है। उसने प्रतिक्रमण किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अब इसमें धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। स्त्री, पुत्र सम्हालना, कमाना... उन्हें वापस भूखे रखना? वस्त्र, कपड़े देना। करना क्या? अब इसमें यह कहाँ निवृत्त है? आहाहा! अरे रे! ऐसे के ऐसे अनादि काल के वर्ष गँवाये। ऐसे क्षण को प्रगट कर कि भूल जा पर को और भगवान को सम्हाल। सम्हाल अर्थात् अन्दर भगवान है, उसमें लीन हो। आहाहा!

ऐसे **तपोधन ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** इस प्रतिक्रमण का यह स्वरूप है। आहाहा! अब दोपहर-शाम जाकर मिच्छामि दुक्कडम् अमुक करके हो गया प्रतिक्रमण। वह तो राग की क्रिया है; और वाणी को क्रिया मेरी है, ऐसा माने, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम। **कारण कि वह...** वह प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, उसका कारण आहाहा! **कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** आहाहा! पहले इसका ज्ञान तो करे कि वस्तु यह है। आहाहा! **परम समरसीभावनारूप से...** देखो! वापस यह भावना आयी। तीसरी बार आयी। पहले परमतत्त्व की भावना थी, पश्चात् सहज वैराग्य भावनारूप से परिणमित हुआ; पश्चात् समरसीभावना। भावना अर्थात् अन्दर एकाग्रता है, वह (भावना है)। आहाहा! **परम समरसीभाव...** अकेला समरसी नहीं। परमवीतरागभावरूप परिणमित हुआ। समरसी भाव अर्थात् वीतरागता। परम वीतरागभावनारूप से **परिणमित हुआ...** आहाहा! **सहज निश्चयप्रतिक्रमणमय है।** पहले कहा था कि उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है, ऐसा कहा था। अब कहते हैं कि वह जीव प्रतिक्रमणमय ही है। आहाहा! उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है कि जो सहज निज परमात्मतत्त्व की आराधना में रमता है और पर से वैराग्य में रमता है, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। वह प्रतिक्रमण कहलाता है। अब उस आत्मा को प्रतिक्रमणमय कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। वह प्रतिक्रमण और आत्मा दोनों अलग नहीं हैं, ऐसा। आहाहा! है ?

प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से... परम वीतरागभावरूप से। वह हो सके नहीं, यह अलग, परन्तु उसकी श्रद्धा और ज्ञान तो करे पहले। (कि) सच्चा वस्तु का स्वरूप यह है। जिसे अभी श्रद्धा-ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे वीतरागता, चारित्र, आचार-फाचार कहाँ से आता था ? आहाहा! **कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** अब अभेद कहना है न ? वह प्रतिक्रमण कहलाता है, ऐसा कहा, परन्तु अब कहते हैं कि वह **समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** वह प्रतिक्रमणमय ही है। प्रतिक्रमणमय-प्रतिक्रमणस्वरूप ही वह है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेद निकाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद निकाल दिया। प्रतिक्रमणस्वरूप उसे कहना। अन्दर निज परमात्मतत्त्व में रमे और वैराग्य से—पर से भिन्न हो, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। फिर

कहते हैं प्रतिक्रमण कहलाता है, यह तो बात की, परन्तु वह आत्मा ही प्रतिक्रमणमय है। आहाहा!

कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से... वह समतारूप से परिणमा है, वह वीतरागभावरूप हुआ है। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द और वीतरागरूप से हुआ प्रभु, उसे सहज निश्चयप्रतिक्रमणमय कहा जाता है। निश्चयप्रतिक्रमणमय। उस निश्चयप्रतिक्रमण स्वरूप ही वह है। आहाहा! पाँच लाइनें हैं। पाँच लाइनों में तो कितना भरा है! आहाहा! अब वह ऐसा का ऐसा पढ़ जाए। कहे पढ़ गए। बापू! यह बहियों का पढ़ना अलग और यह बहियाँ (शास्त्र) अलग है। आहाहा! श्लोक आया न?

श्लोक-११३

[अब इस ८५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

अथ निज-परमानन्दैक-पीयूष-सान्द्रं,
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा।
निज-शम-मय-वार्भिर्निर्भरानन्द-भक्त्या,
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः ।।११३।।

(हरिगीतिका)

अद्वितीय परमानन्द अमृत से भरा भरपूर जो।
उस सहज ज्ञान स्वरूप निर्भर प्रगटरूप निजात्म को॥
आनन्द-भक्तिपूर्वक नहलाओ निज शम-नीर से।
बहुभाँति लौकिक वचनजालों से प्रयोजन क्या तुम्हें॥११३॥

[श्लोकार्थः] आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,

[१]स्फुरित-सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को निर्भर (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ; बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन (अर्थात्) अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ?॥११३॥

श्लोक-११३ पर प्रवचन

अथ निज-परमानन्दैक-पीयूष-सान्द्रं,
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा ।
निज-शम-मय-वार्भिर्निर्भरानन्द-भक्त्या,
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः ।।११३।।

आहाहा ! **[श्लोकार्थः —] आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,...** आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं पैसे में सुख है, भोग में सुख है। इज्जत में, कोई महिमा करे, उसमें सुख है। धूल में भी सुख नहीं। जहर है। आहाहा ! तू बहुत अच्छा, बहुत होशियार, बहुत विद्वान और पण्डित, यह गुणगान सुनकर प्रसन्न होता है, जहर है।

मुमुक्षु : महिमा सुनकर कद्रदान....

पूज्य गुरुदेवश्री : कद्रदान। उसकी कद्र की, कहलाता है। यह तुझे मान हुआ है। आहाहा ! कद्र करे, न करे, न इससे कुछ तुझमें हीनाधिकता हो जाती है ? कद्र करे तो अधिक हो जाए और न करे तो हीनता हो जाए, ऐसा है ? आहाहा ! ऐसा बहुत कठिन काम, बापू ! एकान्त अध्यात्म को छोड़ दो। यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... ऐसा (अभी लोग)। कहते हैं। प्रभु ! तू क्या करेगा ? विकल्प करना, वह भी एक जहर का प्याला पीने (जैसा है)। आहाहा ! राग को करना, शुभ को करना, वह भी जहर का प्याला-विषकुम्भ है। जहर का घड़ा है। समयसार में मोक्ष अधिकार में पाठ है। आहाहा ! प्रभु ! करना तो यह है। निर्विकल्प अमृत को पी। आहाहा !

आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत... आहाहा ! **गाढ़ भरे हुए,...** ओहोहो ! कैसा है प्रभु ? **निज परमानन्दरूपी...** परम अतीन्द्रिय आनन्द, उस स्वरूपी अद्वितीय

१. स्फुरित : प्रगट।

अजोड़-अमृत। ऐसा अमृत अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसे अमृत से भरपूर भगवान है। यह आत्मा आनन्दमूर्ति से भरपूर अन्दर भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा हुआ है। आहाहा! **गाढ़ भरे हुए,...** वापस भाषा देखी? **आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय...** अजोड़ एक **अमृत से गाढ़ भरे हुए,...** आहाहा! ऐसे **स्फुरित-सहज-ज्ञानस्वरूप...** ऐसे प्रगट सहज ज्ञानस्वरूप। प्रगट ज्ञानस्वरूप भगवान है। **आत्मा को निर्भर (-भरपूर)...** आहा! निर्भर। भर से भी निर्भर। यह गाड़ी में भूसा नहीं भरते? वह भर और यह तो निर्भर। उससे विशेष गाढ़ भरा हुआ है। आहाहा! **(-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ;...** यह बात विशेष आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)